समग्र भाषा पद्धति : मेरा अनुभव

मोनू कुमार शास्त्री

बच्चों को भाषा सिखाने का सही तरीक़ा क्या है ? भाषा-शिक्षण का आरम्भ बिन्दु शिक्षाविदों और शिक्षकों के लिए हमेशा से ही असमंजस और विमर्श का बिन्दु रहा है। वैसे तो भाषा-शिक्षण का आरम्भ कहाँ से हो, इस विषय पर बहुत-से प्रयोग और नवाचारी शिक्षण प्रविधियों का निर्माण किया गया है, परन्तु भाषा-शिक्षण विशेषतया अपने वातावरण और परिस्थितियों पर निर्भर करता है। हर बच्चा भाषा की अपनी समझ स्वयं से विकसित करता है। इसी सन्दर्भ में मेरा भी शिक्षण अनुभव है जिसे मैं आपसे साझा कर रहा हूँ।

जब पहली बार मुझे प्राथमिक कक्षाओं में भाषा-शिक्षण का अवसर मिला तो मुझे हर्ष और उत्साह तो हुआ पर साथ ही साथ चिन्ता भी हुई क्योंकि मेरा प्राथमिक कक्षाओं में अध्यापन का अनुभव नहीं था और विशेष रूप से पहली कक्षा में तो बिलकुल भी नहीं। हर्ष इसलिए कि मुझे छोटे बच्चों से बहुत लगाव है और इनसे कुछ-न-कुछ नया सीखने को अवश्य मिलेगा। अतः जब मैंने पहली कक्षा में जाना शुरू किया तो परम्परागत तरीक़े का ही इस्तेमाल किया, परन्तु इस तरीक़े से मैं असमंजस की स्थिति में था कि मुझे आगे क्या करना है। मैं कक्षा में जा रहा था, कार्य कर रहा था, परन्तु मन में सन्तोष का भाव नहीं था। मन में कुछ हलचल थी कि कुछ ठीक नहीं हो रहा है।

फिर एक दिन मुझे एक कविता मिली 'बादल आया'। इस कविता को पढ़कर मुझे इसमें एक खास बात लगी कि इसमें केवल 'आ' (ा) की मात्रा और बहुत ही कम अक्षरों का प्रयोग था। इसको देखकर मुझे एक तरीक़ा सूझा और मैंने इस कविता की पहली लाइन को बोर्ड पर लिखा और इसके साथ-साथ बादल का चित्र भी बनाया। मैंने कोशिश की कि बच्चे कम-से-कम एक शब्द को पहचान लें। मुझे लगा कि शायद यह प्रयास भी असफल होगा क्योंकि प्रारम्भ में मेरी धारणा थी कि जब बच्चों को वर्णमाला ही नहीं आती तो बच्चे इसे कैसे पहचान पाएँगे? इसके बाद इंटरवल के समय जब मैं बैठा था उसी दौरान एक विद्यार्थी मेरे पास खड़ा बातें कर रहा था। तब मैंने अपने हाथ पर 'बादल' शब्द लिखा और उससे पूछा कि यह क्या है? थोड़ी देर देखने और सोचने के बाद उसने बता दिया। मैं हैरान था क्योंकि मुझे उम्मीद नहीं थी कि वह विद्यार्थी इसका जवाब दे सकेगा। पुनः मैंने दूसरा शब्द पूछा तो उसने उसे भी पहचान लिया।

अगले दिन जब मैंने कक्षा में जाकर उस पंक्ति के शब्दों को लिखकर बच्चों से पूछा तो बच्चों की ओर से सन्तोषजनक उत्तर पाकर मेरा उत्साह और भी बढ़ गया। मैं अगले चार-पाँच दिनों तक इस कविता की लाइनों को क्रम से बोर्ड पर लिखकर बच्चों से पढ़वाता गया और साथ-ही-साथ प्रतिदिन इसकी पुनरावृत्ति भी कराता रहा। बच्चे लाइनों व शब्दों को पहचान रहे थे और इससे मुझे प्रत्येक दिन नया उत्साह व आगे का रास्ता भी मिल रहा था। इसके बाद कविता की पंक्तियों में आए शब्दों के फ्लैशकार्ड बनाकर उन शब्दों को विद्यार्थियों से भी परिचित कराया। इससे विद्यार्थी शब्दों को जल्दी पहचान रहे थे और जिनको समझ में नहीं आ रहा था उनकी मदद भी कर रहे थे। इसके साथ-साथ जो भी पंक्ति विद्यार्थी कक्षा में पढ़ते थे उस लाइन को मैं उनकी कॉपी में लिख देता था जिससे कि वे घर पर भी उन पंक्तियों को दोहरा सकें। प्रतिदिन इस कविता को दोहराने से यह कविता बच्चों को याद भी हो गई थी। इसके बाद मैंने विद्यार्थियों को समूह में बाँट दिया और कविता की पंक्तियों को पट्टियों के रूप में काटकर विद्यार्थियों को मिलाने के लिए दीं। समूह में विद्यार्थियों ने उन लाइनों को सरलता से मिला दिया। इस तरह से मिलाने में विद्यार्थियों को मज़ा भी आ रहा था क्योंकि यह कार्य वे स्वयं रुचि के साथ कर रहे थे और इस पूरी प्रक्रिया को बच्चे एक खेल के रूप में स्वीकार कर रहे थे। तत्पश्चात विद्यार्थियों को व्यक्तिगत रूप से कविता की पंक्तियों को मिलाने के लिए दिया। लगभग सभी विद्यार्थियों ने इन पंक्तियों को क्रम में लगा दिया। जब विद्यार्थी पंक्तियों को मिला चुके थे तब उनको उन पंक्तियों के शब्दों को अलग-अलग करके मिलाने के लिए दिया गया। विद्यार्थी पंक्तियों के शब्दों को मिला तो रहे थे परन्तु साथ ही भ्रमित भी हो रहे थे और कुछ विद्यार्थी एक-दूसरे की सहायता लेकर बड़े मज़े से अपने कार्य में लगे हुए थे। मुझे महसूस हो रहा था कि पूरी कविता को एक साथ मिलाने से विद्यार्थी कठिनता का अनुभव कर रहे हैं, इसलिए अगले दिन मैंने पूरी कविता के बजाय आधी कविता के शब्दों को दिया। आधी कविता के शब्दों को विद्यार्थी सरलता से मिला रहे थे और साथ ही साथ शब्दों को पहचान भी रहे थे। शब्दों की समझ हो जाने के बाद विद्यार्थियों को यदि ये शब्द कहीं भी दिखते तो वे उनको पहचान लेते थे। बच्चों की सहायता के लिए मैंने इन शब्दों को कक्षा में लगा भी दिया था जिससे कि ये सभी शब्द उनकी नजरों के सामने रहे। इस कविता को पूरा करने में मुझे लगभग तीन हफ़्ते का समय लगा।

इस कविता के बाद मैंने इस कविता के शब्दों से ही नई कविता 'आया बादल' का निर्माण किया। इस नई कविता में लगभग केवल चार शब्द ही नए थे। इस कविता की प्रक्रिया भी पहली कविता की तरह ही चली। इस कविता को बच्चों ने बहुत ही जल्दी समझा। अब विद्यार्थियों का आत्मविश्वास भी पहले की अपेक्षा बढ़ रहा था। इसके बाद मैं बादल शब्द से सम्बन्धित बदलाव भी करता गया। इसी क्रम में, मैं अगले चरण में केवल शब्दों को ही नहीं अपितु शब्दों को अलग कर उनमें आए अक्षरों को भी परिचित कराता गया और उन अक्षरों से नए सरल शब्द बना देता। कभी तुकान्त शब्दों को पूछता तो कभी-कभी वर्कशीट भी देता। इस तरह कार्य करते हुए मुझे लगभग चार-पाँच महीने का समय लग चुका था। अब बच्चों के आत्मविश्वास के साथ-साथ मेरा भी उत्साह चरम पर था, परन्तु अब भी मेरी सबसे बड़ी चिन्ता का कारण यह ही था कि क्या बच्चे वास्तव में इस विधि से पढ़ना सीख पाएँगे? क्या यह विधि उपयुक्त होगी? इस उहापोह में दूसरी तरफ मेरा मन मुझे हमेशा यह ढाढस देता कि मैं पूरे मन से कार्य कर रहा हूँ और इसका परिणाम अच्छा ही होगा।

इसी बीच एक आश्चर्यजनक घटना घटी कि मैंने अपनी कक्षा के विद्यार्थियों को कक्षा में कुछ गतिविधि करते हुए देखा। मैंने यह पाया कि सब विद्यार्थी किसी-न-किसी गतिविधि में मस्त थे परन्तु दो छात्राएँ 'बातूनी' पत्रिका में बादल से जुड़ी एक कविता को पढ़ने का प्रयास कर रही थीं। मैं चुपचाप उनके पीछे जाकर खड़ा हो गया। वे दोनों परस्पर एक-दूसरे की सहायता भी कर रही थीं और जोड़-जोड़कर पढ़ने का प्रयास भी कर रही थीं। ये देखकर मुझे बहुत ख़ुशी हुई क्योंकि ये दोनों वे छात्राएँ थीं जिनके बारे में मैं सोचता था कि ये तो शायद कक्षा दो में ही पढ़ना सीख पाएँगी। इसके बाद मैंने कक्षा में एक कहानी को पढ़ाना शुरू किया जिसमें बच्चे शब्दों को पकड़ने का प्रयास तो कर रहे थे परन्तु आत्मविश्वास की कमी प्रतीत हो रही थी और मुझे भी लग रहा था कि शायद मैं कुछ ग़लत कर रहा हूँ। बहुत सोचने के बाद मुझे एहसास हुआ कि मैं जिस कहानी/कंटेंट का प्रयोग कर रहा हूँ वह बड़ा भी है और उसमें अधिकतर शब्द बड़े/कठिन हैं। साथ ही कंटेंट में मात्राओं का प्रयोग भी बहुतायत में हुआ है। मैंने मात्राओं के बारे में बच्चों को ज़्यादा बताया भी नहीं था। अतः मैंने सोचा कि क्यों न ऐसी पंक्तियों का प्रयोग किया जाए जिनमें केवल एक ही मात्रा का प्रयोग हो। फिर मैंने ऐसा ही किया और तीन या चार पंक्तियों वाले पैराग्राफ़ का प्रयोग करना शुरू किया। इस तरह के पैराग्राफ़ बनाने में कठिनाई तो बहुत हुई क्योंकि इस पैराग्राफ़ में केवल एक या दो मात्रा का ही प्रयोग होना था और शब्द भी सरल होने चाहिए। बहरहाल, इधर-उधर से खोजने पर और स्वयं बनाने पर मैंने काम चलाने लायक पैराग्राफ़ इकट्ठे कर लिए थे। अपने कार्य को कार्यान्वित करने के क्रम में मैंने वर्कशीट्स का प्रयोग भी बढ़ा दिया था। फलतः बच्चे सरल व छोटे पैराग्राफ़ को पढ़ पा रहे थे। इसके बाद पुस्तकालय में एनसीईआरटी व अन्य प्रकाशन की ऐसी पुस्तकें मिल गईं जिनमें चित्र तो पूरे पेज पर थे परन्तु शब्द बहुत ही कम और सरल भी। इसके साथ ही मैंने उन्हें ऐसी वर्कशीट्स देनी शुरू कीं जिसमें तीन या चार पंक्तियों की कोई कहानी के साथ अति सरल प्रश्न भी थे। कुछ दिन तक तो बच्चे मेरी सहायता लेते रहे। फिर धीरे-धीरे वे स्वयं यह करने लग गए थे। मार्च का महीना आते-आते अधिकतर बच्चे इस अवस्था में आ गए थे कि वे अपनी कक्षा के स्तर के पाठ्य को सरलता से पढ़ पा रहे थे।

सत्र के अन्त में मैं अपने कार्य से सन्तुष्ट था। मुझे बहुत कुछ सीखने को मिला था। मैं आज भी सोचता हूँ कि वास्तविक शिक्षक कौन है, मैं या बच्चे? परन्तु भाषा-शिक्षण की इस विधि से मेरी समझ बहुत विकसित हुई। मैं यह नहीं कहता कि यह तरीक़ा ही सबसे उपयुक्त/उचित है और इससें सभी विद्यार्थी सीख सकते हैं। लेकिन, अपने अनुभव के आधार पर यह अवश्य कहूँगा कि इस तरीक़े से भी विद्यार्थी सरलता से सीख सकते हैं क्योंकि व्यावहारिक रूप से भाषा, अक्षरों तथा शब्दों के क्रम से परे है। बच्चे जिस तरह से भाषा का प्रयोग करते हैं यदि उनके सीखने का वातावरण वैसा ही हो तो सीखने की गति भी बढ़ जाती है। इस विधि से कार्य करने में कुछ मुश्किलें भी आईं क्योंकि जिस तरह से केवल कुछ ही शब्दों से बनी कविताओं पर कई दिनों तक कार्य किया गया तो बच्चों के पालकों ने कहा कि प्रतिदिन केवल एक ही गृहकार्य दिया जा रहा है। इसलिए उनको विश्वास में लेना और लगातार बातचीत करना मेरे लिए अनिवार्य था। काफ़ी दिनों तक एक तरीक़े से कार्य करते हुए कभी-कभी मन में नकारात्मकता भी आ जाती थी क्योंकि ऐसा प्रतीत होता था कि शायद बच्चे सीख नहीं पा रहे हैं। और सबसे बड़ी बात यह कि हम सभी जानते हैं कि प्रत्येक बच्चे की सीखने की गति अलग-अलग होती है और कोई विद्यार्थी किसी एक चीज़ को जल्दी सीख जाता है और कोई विद्यार्थी किसी अन्य चीज़ को। अतः बहुत धैर्य रखने की आवश्यकता पड़ती है।

सामान्यतया हम परम्परागत तरीकों और पद्धतियों पर इस हद तक आश्रित हो जाते हैं कि बच्चे की मनःस्थिति और उनकी विकसित होती समझ की उपेक्षा कर जाते हैं। नवीन, विकसित होतीं तार्किक और प्रासंगिक पद्धतियों के प्रति हमारी निर्वैयक्तिकता का भारी ख़मियाज़ा हमारे बच्चों को भुगतना पड़ता है। इन प्रयोगों और दृष्टिकोणों का समग्र भाषा-शिक्षण में उपयोग सर्वथा प्रासंगिक है।

मोनू कुमार शास्त्री सन् 2012 से अज़ीम प्रेमजी स्कूल मातली, उत्तरकाशी में बच्चों के साथ हिन्दी भाषा-शिक्षण में समग्र भाषा पद्धति पर कार्य कर रहे हैं। उनसे monu.kumar@azimpremjiifoundation.org पर सम्पर्क किया जा सकता है।